तीरंदाज

■ अश्विनी भटनागर

हठ और होड़

मैया, मैं तौ चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं॥

भक्त सूरदास की ये प्रसिद्ध पंक्तियां जहां एक तरफ कृष्ण के बाल हठ को दर्शाती हैं वहीं दूसरी तरफ इंसान की गगनचुंबी महत्त्वाकांक्षाओं की भी प्रतीक हैं।

इस दोहे में कृष्ण अपनी माता यशोदा से कह रहे हैं कि उनको चांद चाहिए, जिससे वे एक खिलौने की तरह खेल सकें। वे कहते हैं कि वे यशोदा मइया की गोदी में तभी चढ़ेंगे, जब वे दूर गगन में रौशन अपने खिलौने को लेकर पुनः धरती पर लौटेंगे।

कृष्ण विष्णु के अवतार थे। बाल अवस्था होने के बावजूद उनमें यह सामर्थ्य थी कि आसमान में टंके चंद्रमा को धरती पर उतार सकें। सामान्य मनुष्य में ऐसी सामर्थ्य नहीं है, पर गगन में गमन और चांद सितारों को अपनी मुट्ठी में कर लेने की महत्त्वाकांक्षा उसमें लगातार हिलोरें मारती रही है।

वास्तव में हम अपनी हदों में बंधे रहना नहीं चाहते हैं। शायद प्रस्तुत हद के खूंटे से बंधे रहना मानव प्रवृत्ति के विरुद्ध है। हम अपनी परिधि को लांघने के लिए स्वतः आंदोलित रहते हैं। ये सीमाएं व्यक्तिगत, सामाजिक हो सकती हैं या फिर व्यापक संदर्भ में भी हो सकती हैं। चंद खिलौना लेने का मासूम-सा हठ आगे चल कर एक ऐतिहासिक क्रिया भी बन सकता है।

अपोलो के एस्ट्रोनॉट नील आर्मस्ट्रांग जब चंद्रमा पर उतरे थे, तो कहा था कि उनका चांद पर पहला छोटा-सा कदम मानवता के लिए एक लंबी छलांग है। सच में, चांद की तरफ चकोर की तरह सिर्फ देखने और फिर उस तक पहुंचने का सपना केवल मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा ही पूरा कर सकती है। हमारी जो कुछ भी भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उपलब्धि है, वह हमने अपनी प्रस्तुत सीमाओं को पार करके प्राप्त की है।

महत्त्वाकांक्षी होना अच्छी बात है। हर व्यक्ति और समाज को महत्त्वाकांक्षी होना चाहिए। पर महत्त्वाकांक्षा और होड़ में एक बड़ा बुनियादी फर्क है। आम जिंदगी में हम होड़ में लगे रहते हैं। कौन कितना आगे निकल गया और हम उसको कैसे पछाड़ें के खेल में फंस जाते हैं। इस प्रतिस्पर्धा को अंग्रेजी में रैट रेस यानी चूहा दौड़ कहा जाता है। इसमें हमारा कोई अपना निश्चित लक्ष्य नहीं होता है। हम बस इस बात पर केंद्रित रहते हैं कि हमसे आगे वाला आगे क्यों है और हम उसको कैसे पीछे छोड़ें। रैट रेस विवेकहीन होती है, इसलिए अंधी होती है।

अमेरिका ने जब अपोलो यान चांद पर उतारा था, तो वह रूस से होड़ की वजह से छोड़ा था। 1960 के दशक में दोनों देशों में चंद खिलौना पाने की जबर्दस्त प्रतिस्पर्धा थी। अमेरिका रूस को अंगूठा दिखाना चाहता था। पर कुछ और अपोलो मिशन के बाद इस रैट रेस का कोई मतलब नहीं रह गया था और चंद्रयान जाने बंद हो गए थे।

हां, इससे कुछ वैज्ञानिक फायदे हुए थे, जिनमें सबसे बड़ा सेटेलाइट युग की शुरुआत थी। आज की अति आधुनिक सेटेलाइट आधारित संचार व्यवस्था परोक्ष रूप से अंतरिक्ष कार्यक्रम की देन है। अगर हम चांद पर नहीं जाते, तो मोबाइल पर कैसे बात कर पाते? पर चांद का मुआयना करने के बाद वहां और श्रम करने का प्रयास दोनों- अमेरिका और रूस- ने त्याग दिया था।

अक्सर समाज की आकांक्षा व्यक्ति की महत्त्वाभिलाषा की दास हो जाती है। ग्रीस आज से तेरह सौ साल पहले चौतरफा विकास के पथ पर था। वह एक बड़ा और समृद्ध राष्ट्र ही नहीं था, बल्कि उसमें अरस्तू और प्लेटो जैसे महापंडित भी पुष्पित हो रहे थे। फिर सिकंदर आया और वह दुनिया जीतने की होड़ में लग गया। हाथ में तलवार लिए वह ग्रीस से हिंदुस्तान तक अपना जयघोष करता हुआ चला आया। हजारों लोग उसका शिकार हुए और लाखों घर उजड़ गए। पर सिकंदर के लिए सिर्फ जीत एकमात्र उपलब्धि थी। वह केवल ग्रीस का नहीं, बल्कि पूरी दुनिया का राजा बनना चाहता था। सेना उसके साथ थी- वह उसको अपना महानायक मानती थी।

सिकंदर हिंदुस्तान तक पहुंच गया। कहीं भी नहीं हारा था, पर हिंदुस्तान में जीत के बाद वह टूट गया। उसके अपनों ने ही विद्रोह कर दिया था और विश्वनायक को उनके आगे घुटने टेकने पड़े थे। सिकंदर लौट गया, पर घर का मुंह नहीं देख पाया था। वह रास्ते में ही मर गया। उसकी मौत के बाद ग्रीस का वैभवशाली साम्राज्य बिखर गया था। विश्वविजयी होने की लालसा में उसने अपने घर को ही जला दिया था। न वह कहीं का रहा था और न ही ग्रीक साम्राज्य किसी काबिल बचा था।

तो क्या महत्त्वाकांक्षा की भी कोई हद होनी चाहिए? क्या व्यक्ति की लालसा देश और काल पर हावी होनी चाहिए? एक तरह से देखें तो नायक, नायक तभी बन पाता है, जब उसे समुदाय की स्वीकृति मिलती है। वह नेतृत्व करने की स्थिति में तब आता है, जब लोग उसके पीछे लामबंद हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, नायक वही बन पाता है, जो हमारे अनकहे भावों को जुबान देता है। हमारे दिल में छिपी बात को पहचान कर उसको प्रकट कर देता है।

हम उसको ऐसा करने पर दाद भी देते हैं, क्योंकि अपनी बात कहने की हमारी खुद की हिम्मत नहीं होती है। उसकी हिम्मत में अपने साहस की अनुभूति कर हम प्रफुल्लित हो जाते हैं। शायद उसके पीछे दुबकने में ही अपना शौर्य समझते हैं। समाज में मातहत की प्रवृत्ति तरह-तरह के नायक बनाती है। ऐसे नायक समाज की महत्त्वाकांक्षा का अपहरण कर लेते हैं।

व्यक्तिनिष्ठ समाज अपने खुद के लिए घातक होता है। इसके विपरीत जन-केंद्रित, संस्था-निष्ठ समाज और देश हमेशा स्वस्थ और विवेकशील रहता है। संस्थाएं समाज की महत्त्वाकांक्षाओं को संगठित बुद्धिमत्ता से तोलती हैं और नायकों की महत्त्वाभिलाषा को खरे खूंटों से बांधती हैं। वे निजी स्वार्थ की सीमाएं निर्धारित करती हैं और देशहित को व्यापक रूप से परिभाषित करती हैं।

संस्थाएं चंद खिलौना लैहौं वाला हठ नहीं करती हैं, बल्कि अपनी धरती से अच्छी फसल उगाने की मशक्कत में हल-बैल लेकर जुटी रहती हैं। वे सिकंदर को टूटने से बचाती हैं। साम्राज्य की महत्त्वाकांक्षा से स्वराज के यथार्थ की ओर उन्मुख करती हैं। प्रतिस्पर्धा से हटा कर श्रेष्ठता की वैजंती प्रदान करती हैं।

भारतीय होने का अर्थ

रमेश दवे

क्या 'भारतीय' मात्र एक शब्द है या विचार? भारतीयता के जितने अर्थ हैं, उतने ही अनर्थ भी हैं। एक है वैचारिक भारतीयता, जो बुद्धिजीवियों द्वारा अपने-अपने ढंग से परिभाषित या व्याख्यायित की जाती है। आज का भारत एक संपूर्ण प्रभुता-संपन्न स्वतंत्र गणराज्य है। यहां तरह-तरह की भारतीयता होना, भारत की बहुधर्मी, बहु-सांस्कृतिक, बहु-क्षेत्रीय, बहुभाषी, बहु-जातीय और बहु-विचारधारागत परंपरा का परिणाम है। संविधान में इंडिया अर्थात भारत कहा गया है। वहां हिंदुस्तान, भारतवर्ष, जंबूद्वीप आदि नामों को संवैधानिक मान्यता शायद नहीं है। पर दूसरी ओर कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो 'हिंदुस्तान' और 'हिंदुस्तानी; को तो मानते हैं, लेकिन भारतीय और भारतीयता को एक प्रकार की कथित सांप्रदायिकता मानते हैं। वे तहजीब के गंगा-जमुनीपन को तो मानते हैं, लेकिन सांस्कृतिक एकता को सांप्रदायिक कहते हैं। केवल कुछ भाषायी शब्दों से भारतीयता तय होती है, तो फिर हम भारतीयता के वे सब तत्त्व त्याग दें, जो हमें अपने भारतीय या हिंदुस्तानी होने का बोध कराते हैं। संस्कृति कहें या तहजीब, इसमें हम जीते रहे हैं, आज भी जी रहे हैं। यही हमारी परंपरा, हेरिटेज या रिवायत है। अगर हम सांस्कृतिक या कौमी एकता का विभाजन करेंगे, तो फिर क्या यह कहेंगे कि हम तुलसीदास को सांस्कृतिक भारतीयता से जोड़ सकते हैं, अगर दूसरी ओर से यह कहा जाएगा कि हम तुलसी को नहीं, कबीर को सच्चा भारतीय मानते हैं।

अब प्रश्न यह है कि किसे भारतीय कहा जाए और किसे नहीं? क्या मीर, गालिब, सौदा, मोमिन से लेकर फिराक, बशीर बद्र, निदा फजली अलग किस्म के भारतीय हैं और कबीर, तुलसीदास, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, अज्ञेय से लेकर हमारे समकालीन तमाम कवि दूसरी तरह के भारतीय हैं? क्या बड़े गुलाम अली से मोहम्मद रफी तक, मकबूल फिदा हुसेन, सैयद हैदर रजा से लेकर समकालीन चित्रकारों तक या प्रेमचंद से लेकर रेणु और आज के कथाकारों तक और अनेक कला-साहित्य में सृजन करने वाले कलाकारों की भारतीयता का बंटवारा किया जा सकता है? भारत ने तो अपने एक हजार वर्ष से अधिक के इतिहास में उन सबको अपनाया, जो बाहर से आए और बस गए। उनका इतिहास, उनका साहित्य, उनकी कलाएं, उनका स्थापत्य, उनका प्रशासन और काफी हद तक उनकी शिक्षा और तहजीब तक से भारत ने अपने को जितना ग्लोबल, उदार और सर्व-समावेशी बनाया, वैसा तो दुनिया के किसी देश में नहीं हुआ। यहां हिंदू, पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलिम, सिख सभी एक होकर अगर भारतीय कहलाते हैं, तो ऐसा कोई अन्य देश है, जहां इतने सारे धर्मावलंबियों को उस देश की देशीयता दी गई हो?

विचार, विचारधाराएं, आस्था और विश्वास, खाने-पीने का तरीका अलग हो सकता है, मगर अलग-अलग होकर भी एक लगता है, तो यह सिर्फ भारत की परंपरा है। हम चाहे अपने को भारतीय कहें या हिंदुस्तानी, मकसद सिर्फ एक हो कि यह मुल्क एक है और इस मुल्क का हर बाशिंदा यहां का ही है। और जो नागरिक है वह भारतीय भी है। इसलिए भारतीय होने को किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता से जोड़ना संविधान, देश की परंपरा और राष्ट्रीय एकता का अपमान ही कहा जाएगा, क्योंकि भारतीयता एकता का सूचक शब्द है विभाजन का नहीं।

'भारतीयता' को उसके व्यापक दर्शन में देखना होगा। भारतीय एक स्वतंत्र राष्ट्र की नागरिक राष्ट्रीयता है। भारतीयता का पहला सबक शिक्षा से शुरू होना चाहिए। वहां भारतीयता के व्यापक अर्थ से हम छात्र-छात्राओं को जोड़ सकते हैं, ताकि वे भविष्य के ऐसे नागरिक बनें जो एक सर्वधर्म-समावेशी भारतीयता की पहचान हों। अगर संविधान में समानता का प्रावधान है, तो हम संविधान के विरुद्ध जाकर किसी को भी गैर-भारतीय नहीं कह सकते, चाहे उसका धर्म, भाषा या क्षेत्र कोई भी हो। हमें अपना इतिहास और भूगोल, संस्कृति और भाषा पढ़ाने का और कलाओं, साहित्य आदि को देखने का नजरिया बदलना होगा। हमारी शिक्षा ने हमें आज तक गांधी जैसा स्वदेशी नहीं बनाया, जिसका परिणाम हमारे अपने-अपने स्वदेश और स्वदेश के धर्म हो गए। शिक्षा को चेतना की पाठशाला होना चाहिए, न कि संस्कृति के नाम पर कट्टरता की। चेतना से मनुष्य विवेकवान बनता है और उस पर कोई भी विचार या विचारधारा थोपी नहीं जा सकती।

हम आज जिस आधुनिक, उत्तर-आधुनिक समय में रह रहे हैं, उसने हमें उपकरण तो दिए, मगर आचरण नहीं दिए। उसने सारी दुनिया को एक मोबाइल या कंप्यूटर में साकार तो कर दिया, लेकिन हमारे सांस्कृतिक सौंदर्य की छटा कम कर दी। हम सूचना के बंदीगृह में तो कैद हो गए, लेकिन सोचने का मुक्त आकाश गंवा बैठे। हमारे पास अगर बहुत संपन्न संस्कृति, वांग्मय, धर्म-व्यवस्था की नैतिकता और अपनी जातीय-स्मृति रही है, तो उसे हम ओछी राजनीति और संकीर्ण, कुटिल एवं विघटनकारी शक्तियों से बचाएं। हम युद्ध के शस्त्रों की होड़ के बजाय शास्त्रों की दौड़ से ऐसा शास्त्र क्यों न रचें कि हम हजारों साल पुराने वांगमय के सहारे जीने के बजाय अपने समय के साहित्य को भी नया वांगमय बना कर अगली पीढ़ी को सौंप सकें? जब तक हमारा चिंतन नहीं बदलता, हमारी चेतना नहीं बदलती और हमारी चिंताएं मानवीय नहीं होतीं, तब तक हम वैसे भारतीय कैसे हो सकते हैं जैसे दयानंद, विवेकानंद, श्रीअरविंद, रामकृष्ण परमहंस, जे. कृष्णमूर्ति और गांधी आदि थे। हम जितने तुलसी, कबीर के देश हैं उतने ही मीर और गलिब के भी देश हैं, हम जितने एनी बेसेंट, फादर कामिल बुल्के और रस्किन बांड के देश हैं, उतने ही सर सैयद अहमद खां, बादशाह खान, मौलाना आजाद आदि के भी देश हैं। इसलिए भारतीयता न तो किसी व्यक्ति, धर्म, इतिहास या अपनी अपनी मान्यता से तय होती है, न क्षेत्र, जाति और भाषा से। भारतीय होना एक ऐसा मनुष्य होना है, जिसमें महावीर की महानता और बुद्ध की प्रबुद्धता हो और देश का अर्थ यहां का प्रत्येक जन, प्रत्येक व्यक्ति से प्यार करे, उसका सम्मान करे और सब मिल-जुल कर उस भारतीयता को जिए। भारतीयता में जीने का अर्थ है हम अपने लोकाचार, शिष्टाचार, सामासिक-संस्कृति-बोध, रीति-रिवाज, उत्सव-त्योहार, पूर्वजों के सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक योगदान की स्मृति में जीएं तो जरूर, लेकिन अपनी आधुनिकता को संवेदनशील, गतिशील और सर्वधर्म समावेशी बनाएं, वैज्ञानिक सोच से अंधविश्वास, सांप्रदायिकता आदि से मुक्त होकर ऐसे भारतीय दिखें कि सारा विश्व यह कह सके कि यह 'वसुधैव कुटुंबकम; की सभ्यता वाला, सहिष्णु और भावी संभावनाओं का एक ऐसा देश है जिसका हर नागरिक होने पर गर्व करता है।

यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता है कि क्या संविधान में निहित धर्म-निरपेक्षता, पंथ-निरपेक्षता महज आदर्श-वाक्य हैं या आचरण और व्यवहार? इन प्रश्नों के उत्तर तो हमारा एक हजार वर्ष का मिला-जुला इतिहास ही दे रहा है। एक भारतीय हिंदू नागरिक जिस प्रकार की मंदिर-श्रद्धा से मंदिर जाता है, वैसी ही श्रद्धा और सम्मानभाव से वह मजारों पर मत्था टेकता है, गुरद्वारों में सिर ढंक कर गुरुग्रंथ साहब को प्रणाम करता है, चर्च में प्रार्थना करता है। ऐसी भारतीयता क्या दुनिया में कहीं मिलेगी?

यह देश तरह-तरह की तहजीबों का संगम है। यहां आदिवासी-सभ्यता का भोलापन है, यहां दलित अब सम्मान के साथ खड़े होकर अपनी अस्मिता रच रहे हैं, यहां की युवा शक्ति सारी दुनिया में भारतीयता को समृद्ध और सम्मानित कर रही है, यहां का किसान तमाम अभावों और प्राकृतिक कोपों के बावजूद पूरे देश का पेट भर रहा है, यहां के मजदूर अपने पसीने की हर बूंद देश पर निछावर कर रहे हैं, यहां हर धर्म अपना धर्माचरण के लिए स्वतंत्र है। यहां स्त्रियां बराबरी का अधिकार पाकर सांसद, विधायक, पार्षद के रूप में अपनी शक्ति दिखा रही हैं। एक स्वच्छ, श्रेष्ठ और सकारात्मक भारतीयता से हम देश को बदल कर अर्थ को अनर्थ से बचा सकते हैं।

संदर्भ

> यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता है कि क्या संविधान में निहित धर्म-निरपेक्षता, पंथ-निरपेक्षता महज आदर्श-वाक्य हैं या आचरण और व्यवहार? इन प्रश्नों के उत्तर तो हमारा एक हजार वर्ष का मिला-जुला इतिहास ही दे रहा है।

आधुनिकता बनाम संकीर्णता

वक़्त की नब्ज़

■ तवलीन सिंह

कभी-कभी ऐसा लगता है मुझे कि जो थोड़ी-बहुत आधुनिकता आई है अपने इस भारत महान में, वह गलती से आई है। इस हफ्ते अगर यह खयाल मुझे कुछ ज्यादा सता रहा है, तो इसलिए कि एक तरफ तो हम चांद पर जाने के सपने देख रहे हैं और दूसरी तरफ हमारे मंत्रीयों की सोच ऐसी है आज भी जैसे किसी प्राचीन काल में जी रहे हों। जिस दिन चांद पर हम अपने 'विक्रम' को उतारने की तैयारी कर रहे थे, उस दिन मुंबई के एक अखबार में केंद्रीय पशुपालन मंत्री गिरिराज सिंह का बयान पढ़ा, जिसने मुझे हैरान कर दिया।

मंत्रीजी किसी गोशाले में खड़े होकर बात कर रहे थे पत्रकारों से और उनसे शायद किसी ने मॉब लिंचिंग के बारे में सवाल किया होगा। जवाब में उन्होंने कहा कि इस तरह की हिंसा को कम करने का तरीका उनके मंत्रालय ने ढूंढ़ रखा है, जो अगले कुछ सालों में रंग लाने वाला है। उपाय उनके पास यह है कि गायों को 'आर्टिफिशियल इन्सेमिनेशन' द्वारा गर्भवती किया जाए, ताकि बैलों की संख्या कम हो जाए। मंत्रीजी का मानना है कि इस उपाय के बाद गायों को लावारिस नहीं छोड़ा जाएगा, जैसे आज छोड़ा जाता है, इसलिए कि दूध जब तक देती है गाय, तो उसको किसान अपने पास रखते हैं।

आप अगर पूछ रहे हैं कि मॉब लिंचिंग से इस उपाय का क्या वास्ता है, तो यकीन मानिए कि इसी सवाल को मैंने भी बार-बार पूछा मंत्रीजी का बयान पढ़ने के बाद। शायद मंत्रीजी जानते नहीं हैं कि मुसलमानों की लिंचिंग जब भी हुई है, तो वे अपनी ही गायों को ट्रक में लेकर जा रहे थे, लावारिस गायों को नहीं। या फिर तब हुई है जब उनकी गाड़ियों में गोश्त पाया गया और भीड़ को शक रहा कि गाय को काट कर उसका गोश्त लेकर जा रहे हैं।

जब दलित बने हैं इस तरह की हिंसा का शिकार, तो अक्सर इसलिए कि उनको मृत गाय की खाल उतारते पाया गया। जो भी हो, गोरक्षकों ने भय का इतना माहौल बना दिया है उत्तर भारत में कि कई किसानों ने पशुपालन छोड़ दिया है और जिनका धंधा हुआ करता था बूढ़ी गायों को मारना, उन्होंने भी यह यह काम छोड़ दिया है। नतीजा यह कि लावारिस गायों की संख्या तीन-चार गुना बढ़ गई है उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में। झुंडों में घूमने लगे हैं लावारिस पशु और न सिर्फ किसानों की फसलें बर्बाद कर रहे हैं, बल्कि इंसानों पर भी हमला करना शुरू कर दिया है गायों ने। हाल में एक वृद्ध औरत को जान से मार दिया एक लावारिस गाय ने और इस हमले का वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल हो गया था।

> हिंदुत्व शब्द सावरकर ने दिया है और इस सोच को भी, लेकिन उनके हिंदुत्व में गौमाता की पूजा करने वालों के लिए कोई जगह नहीं थी। उनका कहना था कि गौमाता की पूजा करते-करते भारतवासी खुद गाय की तरह शांत स्वभाव के बन गए हैं।

मैंने कई बार गोरक्षकों की हिंसा की निंदा की है और दोष दिया है हिंदुत्ववादी सोच को, जो नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद खूब फैला है देश में। लेकिन पिछले हफ्ते वीर सावरकर पर दो किताबें पढ़ने के बाद मुझे अहसास हुआ कि उनकी सोच तो आज के राजनेताओं से कहीं ज्यादा आधुनिक थी। हिंदुत्व शब्द सावरकर ने दिया है और इस सोच को भी, लेकिन उनके हिंदुत्व में गौमाता की पूजा करने वालों के लिए कोई जगह नहीं थी। उनका कहना था कि गौमाता की पूजा करते-करते भारतवासी खुद गाय की तरह शांत स्वभाव के बन गए हैं। इसलिए भारत का प्रतीक अगर किसी पशु को बनाना ही हो तो नरसिंह होना चाहिए।

सावरकर के हिंदुत्व में जातिवाद के लिए कोई जगह नहीं है और बहुत बड़ी जगह है आधुनिकता के लिए, वैज्ञानिक विचारों के लिए, आधुनिक तकनीकों के लिए। सो, आज जीवित होते सावरकर तो उनको खुशी होती कि भारत चौथा देश है दुनिया में, जो चांद पर जाने का प्रयास करने में लगा हुआ है। साथ में उनको निराशा जरूर होती गौमता की इतनी पूजा देख कर। हिंदुत्व सोच का आधार है भारत के सनातन धर्म में आधुनिक सुधार लाना और उसमें से वहम और जादू-टोना जैसी खराबियों को निकाल फेंकना। जहां तक जातिवाद को समाप्त करने की बात है, सावरकर की सोच के साथ मेल खाती है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सोच, लेकिन जहां तक आधुनिकता की बात है, दोनों के रास्ते अलग हो जाते हैं। संघ परिवार को वास्तव में इस देश की सेवा करनी है, तो अच्छा होगा अगर मोहन भागवतजी थोड़ा समय निकाल कर सावरकर पर हाल में छपी उन दोनों किताबों को पढ़ें, जो मैंने पिछले हफ्ते पढ़ी हैं।

उनको पढ़ने के बाद शायद आरएसएस भी भारत की सभ्यता में असली आधुनिकता लाने का काम करने लगेगा। इतनी आधुनिक थी सावरकर की सोच कि महात्मा गांधी से मतभेद उनका अक्सर रहता था। उन्होंने गांधीजी का खुल कर विरोध किया, जब उन्होंने कहा था कि बिहार में भूकंप आया है इसलिए कि सवर्ण हिंदू दलितों को अछूत मानते हैं। जब शंकराचार्य ने इसी भूकंप का कारण बताया जाति-व्यवस्था को समाप्त करने की कोशिश, तो इनकी आलोचना भी सावरकर ने खुल कर की थी।

आज के भारत में सावरकर के हिंदुत्व की बहुत जरूरत है। ऐसा हिंदुत्व, जो देशभक्ति पर आधारित हो और आधुनिकता से रौशन हो, ताकि भारत वास्तव में जगद्गुरु बनने का सपना साकार कर सके। चांद तक जाने वाले भारत में कोई जगह नहीं होनी चाहिए ऐसे लोगों की, जो अपना धर्म मानते हैं इंसानों की जान लेना गोरक्षा के बहाने। कांग्रेस पार्टी ने सालों से प्रचार किया है कि सावरकर मुसलमानों के दुश्मन थे। सच यह है कि उनको शिकायत सिर्फ उन मुसलमानों से थी, जो भारत को अपनी पुण्यभूमि नहीं मानते हैं।

जेल नंबर सात

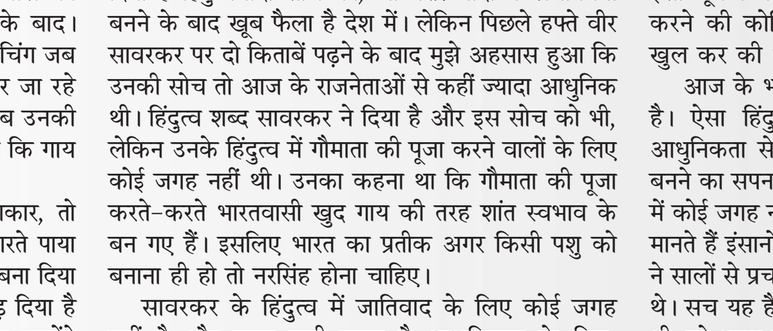

बाखबर

■ सुधीश पचौरी

एक बड़ा आदमी काली गाड़ी से तिहाड़ जाता हुआ, और उसके प्रति हमदर्दी की एक आंख भी नम नहीं।

नकली त्रासदी की जगह असली कॉमेडी ने ले ली।

एक एंकर न जाने क्यों कह बैठा कि देखो तो कैसा जमाना है कि इतना बड़ा बंदा तिहाड़ जा रहा है और किसी को जरा भी रंज नहीं!

एक एंकर दर्शकों को समझाता रहा कि वे तिहाड़ से बचना चाहते थे और इसके लिए ईडी के आगे सरेंडर करने को तैयार थे, लेकिन सीबीआई अदालत ने चौदह दिन की कस्टडी के लिए सीधे तिहाड़ जेल भेज दिया।

देर तक अपने-अपने रिपोर्टरों से एंकर पूछते रहे कि तिहाड़ जाएंगे तो भी क्या वैसा ही 'वीआइपी ट्रीटमेंट' मिलेगा जैसा कि सीबीआई की कस्टडी में मिल रहा था, यानी एसी, वेस्टर्न टायलेट, पलंग आदि।

ऐसे ही अवसर पर रिपोर्टरों और एंकरों के अंदर की बात कभी-कभी बाहर झांक जाती है।

सभी चैनलों के कैमरे सीबीआई के 'स्पेशल कोर्ट' में देर तक तैनात रहे। फिर कुछ चैनलों के कैमरे तिहाड़ के प्रवेश द्वार के सामने तैनात हो गए थे, ताकि तिहाड़ में उनकी 'एंट्री' को दिखा सकें।

एक एंकर बहस कराए जाता था कि बड़ी आदलत ने भी क्या सर जी को भ्रष्टाचार का 'किंगपिन' कहा कि नहीं? एक बोला, हाइकोर्ट ने तो साफ कहा कि वे 'किंगपिन' (सरगना) हैं, इसलिए 'बेल' नहीं दी। विद्वान लोग अपने-अपने कागज दिखाने लगे कि निचली अदालत ने उसे 'किंगपिन' कहा है, ऊंची अदालत ने नहीं कहा।

अरे भैए! अब इससे क्या फर्क पड़ने वाला है? तिहाड़-दर्शन तो हो ही गए!

एक अंग्रेजी एंकर पूछने लगा कि यह 'कर्मा' है कि 'बदले की कार्रवाई'?

कई चैनलों ने लाइन लगाई कि 'पांच प्रतिशत' का अहंकार, पहुंचा तिहाड़!'

बताइए, भाई जी को क्या पड़ी थी कि एक दिन पहले मुस्कराते हुए पत्रकारों से पंजा दिखा कर कह दिए कि 'पांच प्रतिशत'! क्या नहीं जानते, क्या है 'पांच प्रतिशत'! अब भुगतो बेटा!

सच, ऐसी कच्ची तो किसी की न हुई कि जब-जब मांगी बेल, तब-तब मिली जेल!हाय रे दुर्भाग्य!

एक चैनल ने चुटकी ली कि 'एनफोर्समेंट डिपार्टमेंट' के सभी आरोपी वीआइपी सुविधा वाली जेल नंबर सात में रखे जाते हैं। इसी में चार्ल्स शोभराज रहा और छोटा राजन रहता है! इसी में 'बेटा जी' भी रहे हैं।

एक चैनल पर कांग्रेस के वरिष्ठ नेता अश्विनी कुमार 'निजी कैपेसिटी' में बोलते रहे कि कानून की नजर में जेल 'अपवाद' है और 'बेल' नियम है! इस मामले में यह नियम अपनाया गया नहीं दिखता। इसका अफसोस है। आखिर एक शख्स की 'डिग्निटी' का भी सवाल है। 'टेब्लायड जर्नलिज्म' जिस भाषा का उपयोग करता है, उसमें किसी की भी 'डिग्निटी' नहीं बचती।

कैसे लोग हैं ये कि इधर बंदा जेल को रवाना किया जा रहा है, उधर इनको 'डिग्निटी' की पड़ी है। एक 'भ्रष्ट' की डिग्निटी क्या? जब कह दिया 'किंगपिन' तो 'किंगपिन' को पूजोगे क्या?

एक भक्त एंकर हुलस कर चिल्लाया : यह तो अभी शुरुआत है, आगे आगे देखिए, होता है क्या?

ऐसी ही कॉमिक घड़ी में जो मजा अपने भैया जी के अंग्रेजी चैनल प्राइम टाइम के चिंघाड़-शो को देखने में आता है, वह सारे चैनलों को मिला कर देखने में नहीं आता।

अगर 'जले पर नमक छिड़कने' की कला सीखनी हो तो भैया जी से सीखें। ऐसे मौकों पर वे अपना 'हिसाब' चुकता करने में एकदम नहीं चूकते। 'दुश्मन के दुर्दिन' छाप शो में वे देर तक संजीदा नजर आते रहे, मानो किसी शोकसभा में हों। लेकिन ज्यों ही उनका कंठ फूटा, वे दर्जनों विपक्षी नेताओं को एक के बाद एक सीधे तिहाड़ भेजते नजर आए।

> ऐसे मौकों पर वे अपना 'हिसाब' चुकता करने में एकदम नहीं चूकते। 'दुश्मन के दुर्दिन' छाप शो में वे देर तक संजीदा नजर आते रहे, मानो किसी शोकसभा में हों। लेकिन ज्यों ही उनका कंठ फूटा, वे दर्जनों विपक्षी नेताओं को एक के बाद एक सीधे तिहाड़ भेजते नजर आए।

भैया जी दांत पीस-पीस कर एक-एक का नाम लेकर कहते जाते थे : एक दिन तुझे भी जाना है तिहाड़, फिर एक दिन तू भी जाएगा तिहाड़। फिर एक दिन इसे भी जाना है तिहाड़ और उसे भी जाना है तिहाड़! अंततः 'परिवार' को भी एक दिन जाना है तिहाड़!

लेकिन भैया जी को इतने से सब्र कहां, सो लगे हाथ ठोंक लिए लटयन्स छाप मीडिया को भी कि देखा! ऐसा भी एक 'मीडिया' है, जिसने अपने 'आका' को तिहाड़ जाते हुए नहीं दिखाया।

तिहाड़ दर्शन कराते-कराते एक एंकर बोल उठा कि बड़ी ब्रेकिंग न्यूज आ रही है कि 'एमनेस्टी इंटरनेशनल' को 'विदेशी मुद्रा' के मामले में 'फेमा' के अंतर्गत 'नोटिस' दिया गया है। चैनल की बहस में एक चर्चिका ने इस संस्था पर 'सप्रमाण' आरोप लगाया कि किस तरह यह एमनेस्टी इंटरनेशनल 'इस्लामिस्ट' मुअज्जम बेग और जिहादी जान से हमदर्दी रखती है और 'मानवाधिकारवाद' के नाम पर इस्लामिस्टों के अधिकारों की हिमायत अधिक करती है।

आखिरी खबरों में, अगले चैबीस घंटे में, चंद्रमा पर चंद्रयान की 'साफ्ट लैंड़िंग' की खबर छा गई। छा गया! हर चैनल अपना अपना चंद्रमा देखते दिखाने लगा। वैज्ञानिक बताते रहे कि किस तरह आज की रात चंद्रयान की 'साफ्ट लैंडिंग' एक रिकार्डतोड़ सफलता होगी! सफल 'साफ्ट लैंडिंग' के बाद 'स्पेस रिसर्च' के मामले में भारत दुनिया में चौथे नंबर का देश बन जाएगा!

एक चैनल ने लाइन लगाई : यह 'ऐतिहासिक' और 'युगांतकारी' है! पर, ऐसा न हुआ।